Shodh Drishti (An International Peer Reviewed Multidisciplinary Refereed Research Journal) Impact Factor : 7.0
Vol. 16, No. 5, May 2025 ISSN : 0976-6650

थेरियों की बस्ती में अभिव्यक्ति के स्वर

मेनका सिंह
सहायक आचार्य, हिन्दी विभाग, श्री अग्रसेन कन्या पी०जी० कालेज, बुलानाला, वाराणसी

सारांश

समकालीन कवयित्री अनामिका ने काव्य संग्रह "टोकरी मे दिगंत" के अंक-एक थेरियों कि बस्ती" में इतिहास वर्तमान, यथार्थ और कल्पना को एक साथ देखा जा सकता है। बौद्धकालीन थेरियों के बहाने कवयित्री ने वर्तमान स्त्री के दुख, अनुभव आक्रोश एवं आकांक्षा को अभिव्यक्त किया है। देह से परे एक स्त्री की अपनी पहचान है अस्तित्व है। स्व के लिए संघर्षरत स्त्री अपने प्रति समाज के परंपरागत दृष्टिकोण से हट कर एक लोकतान्त्रिक दृष्टिकोण की मांग करती है जो उसकी बदल रही भूमिकाओं के साथ उसे स्वीकार कर उचित स्थान व सम्मान दे सके। अनामिका जी की कविता में स्त्रियाँ पुरुष विरोधी नहीं, बल्कि पितृसत्तात्मकता की विरोधी है।

बीज शब्द : अभिव्यक्ति, थेरियां, पितृसत्तात्मकता।

पितृसत्तात्मक व्यवस्था में स्त्री सदा से ही उपेक्षित रही है, अपने अधिकारों से अनभिज्ञ स्त्री समाज द्वारा किये गए अमानवीय व्यवहारों को अपनी नियति मानकर स्वीकार करती चली आ रही है। उसे धर्म एवं शिक्षा के योग्य नहीं समझा गया। बौद्ध काल से पहले महिलाओं को संन्यास लेने का अधिकार भी नहीं था ।बुद्ध ने जब अपने शिष्य आनंद के कहने पर मठ के द्वार स्त्रियों के लिए खोले तो पहली बार स्त्रियों ने स्वंत्रता का स्वाद चखा और उन्हें आध्यात्मिक चिंतन एवं भिक्षुणी बनने का अधिकार प्राप्त हुआ। बुद्ध की शिष्याओं में अनेक जातियों एवं कुलो से ऐसी स्त्रियाँ थी जो मानसिक एवं दैहिक दुखों से मुक्त होकर अर्हत(पूर्ण मनुष्य) बनी, इन्ही अर्हतो को थेरी कहा गया। थेरियों ने अपनी अनुभूति की अभिव्यक्ति गीत के रूप में की जिसे बुद्ध वांग्मय में थेरी गाथा के नाम से जाना जाता है। "बुद्धत्व की प्राप्ति के पश्चात तथागत संबंधो के बंधन से मुक्त एक नए अनुष्ठान में जुट गये थे। मानवीय पीडाओं से युक्त संसार को करुणा में देख कर वे करुणापूता हो चुके थे। राजा शुद्धोदन के देहपात के पश्चात उनकी अपनी विमाता प्रजापति गौतमी के साथ पांच-सौ स्त्रियाँ भी प्रवाजित हुई। कालांतर में भिक्षुणियों का एक संघ बन गया। तत्कालीन समाज में स्त्री-मुक्ति का वह अद्भुत दिन रहा होगा। इन सभी भिक्षुणियों ने नाना कुलों एवं नाना जीवन अवस्थाओं से आकार प्रवज्या ग्रहण की थी। सभी ने तथागत चरणों में बैठ कर धर्म साधना का अभ्यास किया था ।कुछ भिक्षुणियां अपना जीवन अनुभव हमारे लिए थाती के रूप में छोड़ गयीं। यही मूल धन थेरी गाथा के नाम से प्रसिद्ध है"।[1]

समकालीन कवयित्री अनामिका ने अपने काव्य संग्रह "टोकरी में दिगंत" में थेरियों के बहाने वर्तमान स्त्री के अंतरमन एवं मुक्ति को स्वर दिया। केदारनाथ सिंह ने इस काव्य संग्रह पर टिप्पणी करते हुए कहा है कि "यह पूरी काव्यकृति एक लम्बी कविता है जिसमे अनेक छोटे-छोटे दृश्य, प्रसंग और थेरियों के रूपक में लिपटी हुई हमारे समय की सामान्य स्त्रियाँ आती है"।[2]

इस काव्य संग्रह के अंक एक "थेरियों की बस्ती" में एक सामान्य स्त्री के अंतर्मन की इच्छाओ के रूपक में स्मृति, तृष्णा, भाषा, वितृष्णा, जिजीविषा, सुमंगला, तिल्लोत्मा, सुजाता, लल्लदेद, शांता आदि थेरियां आ-आकर कवयित्री से संवाद स्थापित करती है। एक संवेदनशील स्त्री हृदय होने के नाते कवयित्री थेरियों के रूप में वर्तमान स्त्री के दुःख को महसूस कर पाती हैं क्योंकि आज भी स्त्री की स्थिति में बहुत अधिक परिवर्तन नही हुआ वह आज भी मुक्ति की आकांक्षी है। अतीत से लेकर वर्तमान तक स्त्री को मानसिक रूप से गुलाम बनाने की प्रक्रिया आज भी जारी है "पुरुष अपनी स्त्रियों को एक गुलाम की तरह नहीं बल्कि एक इच्छुक गुलाम की तरह रखना चाहता है सिर्फ गुलाम नहीं बल्कि पसंदीदा गुलाम बनाये रखने के लिए उन्होंने सारे संभव रास्ते अपनाये है।"[3]

कवयित्री अनामिका विद्रोह नहीं समरसता की समर्थक है, उनकी पुरुषों से कोई प्रतिस्पर्धा या होड़ नहीं है। वह अपने लिए सही जगह की मांग करती है क्योंकि वर्तमान स्त्री अपने आप को एकमात्र वस्तु नहीं समझती उसका अपना अस्तित्व है,वह पुरुषों से समानता नहीं चाहती बल्कि स्वयं को मनुष्य समझे जाने की आकांक्षा। अनामिका अपने काव्य संग्रह "टोकरी में दिगंत" की भूमिका में लिखती है कि – स्त्री को सखा और बंधू समझने वाले, उन्हें बराबरी और मान देने वाले पुरुष आज भी कम ही है ! प्रकृति ने उन्हें पाशविक बल तो ज्यादा दिया है पर आत्मबल और आत्मनिग्रह उतना नहीं दिया तभी सौंदर्य उनके लिए कब्जे की चीज़ हो गयी है, कब्जे की चीज़ होते होते स्त्रियाँ थक गयी ही है, इसलिए उनको बुद्ध और सम्बुद्ध न, नि ग्रहि पुरुष और योगी ही अच्छे लगते है, उनके मन में उनके लिए सहज आकर्षण जगता है जो उनके पीछे नहीं पड़ते है और अपनी सारी उर्जा इस योग्य बनने

पुराप्रवाह
क्रमांक 10, 2025

भोजपुर मंदिर : एक स्थापत्यिक अध्ययन

सरला सिंह*

कलात्मक अवशेषों की दृष्टि से मध्य भारत सदैव से ही आकर्षण का केंद्र बिंदु रहा है। इस क्षेत्र पर निरंतर कई वर्षों तक प्रतिहारों, परमारों, चंदेलों और कलचुरियों जैसे राजवंशों का शासन रहा, जिन्होंने समय–समय पर अपनी कलात्मक अभिरुचि को प्रदर्शित करते हुए विभिन्न वास्तुरूपों विशेषकर मंदिरों का निर्माण कराया। राजपूतकालीन जिन 36 कुलों के बारे में बात की जाती है उनमें से आबू पर्वत से संबंध रखने वाले राजवंशों में एक प्रमुख राजवंश परमार वंश भी था। यह एक क्षत्रिय कुल से संबंधित राजवंश था। इसकी उत्पत्ति पद्मगुप्त कृत नवसाहसांकचरित के अनुसार ऋषि वशिष्ठ ने ऋषि विश्वामित्र के विरूद्ध युद्ध में सहायता प्राप्त करने के लिए आबू पर्वत पर यज्ञ किया, जिससे प्रमार नामक पुरुष की उत्पत्ति हुई जो कि परमार वंश का आदिपुरुष कहलाया (भाटिया 1967: 9)। परमार वंश की विभिन्न शाखाएँ थीं परंतु मालवा के परमार प्रमुख रूप से प्रसिद्ध हुए जिन्होंने लगभग तीन सौ वर्षों तक धार मालवा से लेकर विदिशा तक शासन किया। इनमें से सबसे महान परमार शासक भोज परमार (1000–1056 ई०) हुआ जिसका व्यक्तित्व बहुआयामी प्रतिभा से संपन्न था। उन्होंने वास्तुकला, फलित–ज्योतिष, नैतिकता, वैयाकरण, कोषकला, औषध विज्ञान, संगीत, धर्म, दर्शन, काव्य और सौंदर्यशास्त्र के 84 प्रसिद्ध ग्रंथों का संकलन किया। इसके साथ ही वास्तुकला से संबंधित प्रसिद्ध ग्रंथ समरांगण सूत्रधार में उन्होंने स्वयं को मानवीय परिवेश का वह शिल्पी कहा है जिसकी कल्पना में तर्क और भावना, रीति और करुणा एवं लालित्य पूर्ण रूप से समन्वित है (चक्रवर्ती 1991: 5)।

इन परमार शासकों ने मालवा क्षेत्र में मंदिर निर्माण कला की एक विशिष्ट शैली, जिसे भूमिज शैली के नाम से जानते हैं, को प्रश्रय दिया और उससे संबंधित विभिन्न मंदिरों का निर्माण कराया। विभिन्न ग्रंथों के अध्ययन से पता चलता है कि, अकेले मालवा में राजा भोज ने 200 मंदिरों का निर्माण कराया था परंतु खेद का विषय है कि, उनमें से एक भी आज विद्यमान नहीं है (गांगुली 1933: 271)। राजा भोज के द्वारा निर्मित एकमात्र मंदिर भोजपुर (विदिशा, रायसेन जिला) मध्यप्रदेश में स्थित है और वह भी अपूर्ण है (रेखाचित्र 1) (गांगुली 1933: 271)।

11वीं से 12वीं शती के मध्य निर्मित भोजपुर का यह मंदिर आधुनिक मध्य प्रदेश की राजधानी भोपाल से 32 किमी० दूर रायसेन जिले की गौहरगंज तहसील में है, जो राजा भोज के गुंजायमान व्यक्तित्व और मानव जीवन के अलौकिक और उसकी बहुमुखी समन्वयवादी दृष्टि का अनश्वर प्रमाण है (चक्रवर्ती 1991: 5)।

वर्तमान समय में यह मंदिर अत्यंत विशाल रूप में खड़ा है जिसका गर्भगृह बाहर से 65 वर्गफुट और भीतर से 42 वर्गफुट है, जो 115 फुट लंबे, 82 फुट चौड़े और 13 फुट ऊँचे चबूतरे पर स्थित है। मंदिर में अति विशाल शिवलिंग स्थित है, जिसकी कुल ऊँचाई 26 फुट है। मंदिर के अंदर चार विशाल खंभे हैं जो अधूरे गुंबद का भार सँभालते दिखाई देते हैं। इनमें से प्रत्येक 40 फीट ऊँचा है और तीन खंडों में विभाजित है। स्तंभ दिखने में पतले हैं तथा विभिन्न मूर्तियों

*सहायक प्राध्यापिका, श्री अग्रसेन कन्या पी०जी० कॉलेज, वाराणसी, (संबद्धः महात्मा गाँधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी)

SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

समाज में महिलाओं की स्वस्थ्य, शिक्षा एवं सशक्तिकरण का समाजशास्त्रीय विश्लेषण

डॉ. सुनीता सिंह
असि. प्रो. समाजशास्त्र विभाग
अग्रसेन कन्य पी.जी. कालेज,
बुलानाला, वाराणसी

सारांश

किसी भी समाज की उन्नति व प्रगति उसके मानवीय संसाधनों स्त्रियों व पुरुषों के बीच समानता पर निर्भर करती है ये ही सामाजिक संरचना के आधार स्तम्भ होते हैं। पूर्ण एवं निरन्तर विकास के लिए आवश्यक है कि दोनों आधार स्तम्भ अर्थात् स्त्री व पुरुष मिलकर समाज निर्माण में योगदान दें। परन्तु अल्प विकसित व विकासशील देशों के सन्दर्भ में यह धारणा कोरी कल्पना ही साबित होती है। यद्यपि हमारे देश में महिलाओं को देवियों की मान्यता दी गयी है। लेकिन कालान्तर में उनके कार्य योगदान और उनकी प्रतिष्ठा को समाज की मुख्य धारा से दूर कर दिया गया। सिंधु सभ्यता में स्त्री रूपों को ही अधिक पूजा जाता था। वर्तमान युग में चाहे पुरूष हो या महिला प्रत्येक के लिए शिक्षा बहुत जरूरी है। आधुनिक युग विज्ञान और सोशल मीडिया का युग है जिसमें अशिक्षित होना अभिशाप के समान है। महिला शिक्षा एवं सशक्तिकरण, सामाजिक विकास की प्रमुख प्रकिया है। जो महिलाओं को सामाजिक आर्थिक, सांस्कृतिक एवं राजनीतिक विकास में भाग लेने में सक्षम बनाती है। महिलाओं को वास्तविक अर्थ में सशक्त बनाने में शिक्षा का सबसे महत्वपूर्ण स्थान है। इसलिए महिला शिक्षा आवश्यक है जिससे उनकी स्थिति में सुधार हो सके, ताकि वे बदलाव के लिए उत्प्रेरक का कार्य कर सकें। स्वस्थ जीवन शैली और पौष्टिक भोजन का अधिक सेवन मनुष्य को जीवन भर अच्छा स्वास्थ्य प्रदान कर सकता है। भारत सरकार महिलाओं के स्वास्थ्य की स्थिति में सुधार के लिए कई प्रयास कर रही है, गरीबी, लिंग भेदभाव और जनसंख्या में निरक्षरता उपयुक्त हस्तक्षेपों के कार्यान्वयन से जुड़ी प्रमुख समस्याएं हैं। जो भारत में महिलाओं की स्वास्थ्य संबंधी चिंताओं को प्रभावित करते है।

मुख्य शब्द :- समाज, महिला, शिक्षा, साक्षरता, स्वास्थ्य, सशक्तिकरण, योजनाएं।

प्रस्तावना

महिलाओं का स्वास्थ्य जैविक, सामाजिक और सांस्कृतिक कारकों से प्रभावित होता है। गहन अध्ययनों से पता चला है कि पूरे जीवन चक्र में महिलाएं पुरुषों की तुलना में अधिक बीमार और विकलांग होती हैं। यह सुझाव दिया गया है कि महिलाएं विशेष रूप से कमजोर होती हैं, जहां बुनियादी मातृत्व देखभाल उपलब्ध नहीं होती है। जैसे जैविक कारकों की भागीदारी के कारण, महिलाओं को एचआईवी सहित यौन संचारित संक्रमण (एसटीआई) होने का पुरुषों की तुलना में अधिक

Research Discourse (ISSN 2277-2014) : An International Peer-reviewed Refereed Research Journal, **Published by :** SARDI, Varanasi, U.P. (INDIA)
Indexed by : IIJIF, I2OR, SJIF, **IIJ Impact Factor :** 7.680, Vol. XV, No. III, July-September **2025,** Page No. : **72-7**
Received- 28/07/2025, Reviewed- 28/08/2025, Accepted- 29/08/2025

मिथक और पितृसत्ता

डॉ0 संदीप कुमार यादव*
*असि0प्रो0, समाजशास्त्र विभाग, शहीद हीरा सिंह राजकीय स्ना. महाविद्यालय, धानापुर–चंदौली, उ0प्र0
डॉ0 बंदनी कुमारी**
**असि0प्रो0, समाजशास्त्र विभाग, श्री अग्रसेन कन्या पी.जी. कॉलेज, वाराणसी, उ0प्र0

सारांश : मानव सभ्यता में मिथक केवल धार्मिक या सांस्कृतिक आख्यान नहीं रहे, बल्कि सामाजिक मूल्यों, लैंगिक भूमिकाओं और सत्ता–संबंधों को वैधता प्रदान करने वाले विचार–तंत्र के रूप में भी कार्य करते रहे हैं। विशेष रूप से भारतीय, ग्रीक और मेसोपोटामियाई मिथकों में स्त्री को या तो देवी की आदर्शीकृत रूप–छवि में बाँधा गया है या फिर आज्ञाकारिता, त्याग और शुचिता के प्रतीक रूप में दर्शाया गया है। यह द्विविध छवि पितृसत्ता को नैतिक और सांस्कृतिक आधार उपलब्ध कराती है, जिससे पुरुष वर्चस्व को **"दैवीय"** स्वीकृति मिलती दिखाई देती है। मिथकों में निहित भाषा, रूपकों और कथानक–संरचनाओं के माध्यम से यह विश्लेषित किया गया है कि किस प्रकार स्त्री की एजेंसी को सीमित कर उसे परिवार, विवाह और प्रजनन संबंधी भूमिकाओं में केन्द्रित किया गया। सामाजिक नियंत्रण के उपकरण के रूप में मिथक समय–समय पर पुनर्व्याख्यायित होते रहे हैं ताकि पितृसत्ता बदलते सामाजिक संदर्भों में भी टिकाऊ बनी रहे। मिथकों का आलोचनात्मक पुनर्पाठ पितृसत्तात्मक धारणाओं को चुनौती देने और लैंगिक समानता की ओर वैकल्पिक सांस्कृतिक कल्पनाएँ विकसित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है।

मुख्य शब्द : मिथक, पितृसत्ता, सामाजिक मूल्य, लैंगिक भूमिका, सौन्दर्य–मिथक आदि।

प्रस्तावना : एक व्यक्ति के रूप में स्त्री के समाजीकरण की प्रक्रिया में सामाजिक और धार्मिक मिथकों का महत्वपूर्ण योगदान होता हैद्य मिथक वह धार्मिक–सांस्कृतिक कथा, धारणा या विश्वास है जिसे समाज 'सत्य' मान लेता है, जबकि उसका आधार ऐतिहासिक, वैज्ञानिक या तार्किक न भी हो। यह सामाजिक–सांस्कृतिक व्यवस्था को बनाए रखने का साधन होता है। मिथक केवल धार्मिक–सांस्कृतिक कथा नहीं, बल्कि समाज द्वारा गढ़ी गई धारणाएँ हैं, जिनका उद्देश्य किसी व्यवस्था या मूल्य को स्थिर बनाए रखना होता है। मिथक अक्सर सामाजिक नियमों और शक्ति संरचनाओं को **"प्राकृतिक"** और **"सामान्य"** सिद्ध करते हैं।

अनेक मिथक सांस्कृतिक बिम्बों के रूप में भारतीय महिलाओं के अवचेतन में स्थापित होकर उनके समस्त जीवन को निर्धारित एवं निर्देशित करते हैं। सामान्यतया मिथक समाज विशेष के मूल्यों पर आधारित होते है या दुसरे शब्दों में हम कह सकते है कि निर्मित होने के पश्चात् सामाजिक–धार्मिक मिथक किसी समाज विशेष के मूल्यों और मानकों का संस्थाकरण करते हैद्य मिथक न केवल एक स्थापना है, बल्कि एक अपेक्षा भी।

भारतीय समाज के सामाजिक–सांस्कृतिक एवं धार्मिक इतिहास के अलग–अलग कालखंडों में अनेक ऐसे मिथकों का निर्माण हुआ जो भारतीय समाज में महिलाओं की प्रस्थिति को परिभाषित और रेखांकित करती है एवं समाज में स्त्री–पुरुष संबंधों की व्याख्या करने के साथ ही लैंगिक भूमिकाओं को निर्मित करके पितृतंत्र की आधारशिला को मजबूत करती है। मिथकों में स्त्री के आदर्श रूप को परिभाषित किया जाता है जैसे–सीता, सावित्री और अनुसूया जैसे महिला पात्रों को पतिव्रता और सती के रूप में प्रस्तुत किया गया है, जो पतियों के प्रति असीम भक्ति और समर्पण दिखाती है। इन आदर्शों ने महिलाओं से अपेक्षित व्यवहार और भूमिकाओं की एक परिभाषा बनाई। इसी प्रकार मिथकों में पुरुष पात्रों को प्रमुखता और श्रेष्ठता प्रदान की गई है। अनेक महाख्यानों जैसे रामायण और महाभारत में पुरुष नायकों के साहस, शक्ति और निर्णय लेने की क्षमता का महिमामंडन किया गया है और स्त्री पात्रों को सहायक व अधीनस्थ भूमिका में प्रदर्शित किया है।

महिलाओं के जीवन को प्रभावित करने वाली सामाजिक और सांस्कृतिक संस्थाओं में प्रमुख स्थान धार्मिक और सांस्कृतिक मिथक, स्त्री देह से जुडी पवित्रता की अवधारणा, विवाह, वंश, जाति और आर्थिक स्तर इत्यादि का है, जहाँ तक भारतीय समाज में महिलाओं पर मिथक के प्रभाव की बात है स्त्री का मिथक समर्पण का मिथक हैद्य मिथक न केवल स्त्री के व्यक्तित्व का सतत घेराव किए रहता है, बल्कि इस प्रक्रिया को इतना स्वाभाविक, इतना मूलभूत और इतना सर्वव्यापी बना देता है कि वह अपनी पराधीनता का अनुभव भी नहीं कर पाती।[1]

शाब्दिक रूप में पितृसत्ता का तात्पर्य है 'पिता का शासन' इस पद का प्रयोग दो अर्थों में किया जाता है। प्रथम अर्थ में, इसका प्रयोग स्त्रियों पर पुरुषों की सत्ता को प्रदर्शित करने के लिए किया जाता हैद्य द्वितीय अर्थ में, इस पद को घर–परिवार के एक ऐसे संगठनात्मक स्वरुप के लिए किया जाता है जिसमे सबसे वरिष्ठ पुरुष की (मुखिया) परिवार के सभी सदस्यों (कनिष्ठपुरुषों सहित) पर सत्ता होती है।[2] दुसरे शब्दों में हम कह सकते है कि **'पितृसत्ता'** शब्द की उत्पत्ति नारीवादी आन्दोलन की उपज है, यह एक ऐसी सामाजिक–सांस्कृतिक व्यवस्था है जिसमें स्त्री और पुरुष के आपसी सामाजिक संबंधों में गैर बराबरी की अभिव्यक्ति होती है और समाज की प्रत्येक संस्था चाहे वो परिवार हो या विवाह या कोई भी, सामाजिक–सांस्कृतिक मूल्यों और समस्त सामाजिक संरचना में पुरुष को स्त्री के सन्दर्भ में वरियता प्रदान किया जाता हैद्य इस व्यवस्था में पुरुष द्वारा निर्मित मूल्यों और मानकों को स्त्रियों पर थोपा जाता है जिसके द्वारा स्वाभाविक तौर पर स्त्रियों को अधीनस्थ प्रस्थिति की ओर धकेला जाता है।

जहाँ तक मिथकों के प्रभाव की बात है तो अनेक समाजशास्त्रियों का मत है कि पितृतंत्र का आरम्भ ही सृष्टि से जुड़े मिथकों में है, जिसके अतर्गत स्त्री को सृष्टि में अनुपूरक और पुरुष की सहयोगी माना गया है। इसाई धर्म में प्रचलित, सृष्टि की उत्पत्ति संबंधी विचार जो आज भी पश्चिमी सभ्यताओं में जीवित हैं उनके अनुसार 'ईव' की उत्पत्ति 'आदम' के साथ नही हुई, ईव को न तो उसी मिट्टी से बनाया गया जिससे आदम को निर्मित किया था और ना ही किसी अन्य पदार्थ से उसका गढ़न हुआ बल्कि उसकी उत्पत्ति प्रथम पुरुष (आदम) के 'पसली' से हुई। उसकी उत्पत्ति भी स्वतंत्र नहीं है ईश्वर ने ईव की उत्पत्ति किसी

International Journal of Education and Science Research Review
Volume-12, Issue-6 Nov-Dec-2025 E-ISSN 2348-6457
(Peer-Reviewed, Open Access, Fully Refereed International Journal) P-ISSN 2349-1817
www.ijesrr.org Impact Factor - 7.02 Email- editor@ijesrr.org

सात्विकता से साधना तकः सनातन संस्कृति में आहार परंपरा

श्रीमती दिव्या पाल
असिस्टेंट प्रोफेसर (गृह विज्ञान विभाग)
श्री अग्रसेन कन्या पी.जी कॉलेज वाराणसी
Email ID - divya.pal25@gmail.com

शोधसार

मानव जीवन में आहार का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है। आहार केवल शरीर को पोषण एवं ऊर्जा देने का साधन नहीं अपितु यह हमारी संस्कृति, दर्शन एवं आध्यात्मिकता का भी दर्पण है। भारतीय परंपरा के अनुसार आहार का व्यक्ति के स्वास्थ्य, मानसिक चेतना, आध्यात्मिक उन्नति पर प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है। प्राचीन ग्रंथों में आहार का सात्विक, राजसिक एवं तामसिक वर्गीकरण का उल्लेख मिलता है। सात्विक आहार को पवित्र एवं साधना के लिए उचित माना गया है। सनातन आहार का आशय है कि ऐसा आहार जो प्राकृतिक, सात्विक और आयुर्वेदिक हो। यह आहार शुद्ध, संतुलित और पोषण से परिपूर्ण होता है एवं सकारात्मक विचार उत्पन्न करता है। उपनिषद , चरक संहिता, आयुर्वेद में सात्विक आहार को साधना की सफलता के लिए आवश्यक माना गया है। आयुर्वेद के अनुसार आहार दोषों (वात, पित्त, कफ) के संतुलन को नियमित रखता है एवं रोग प्रतिरोधक क्षमता को बढ़ाने में भी सहायक है। वर्तमान समय में व्यस्त जीवनशैली, असंतुलित आहार और प्रसंस्कृत खाद्य पदार्थों के कारण मधुमेह, उच्च रक्तचाप, मोटापा विभिन्न प्रकार की बीमारियों में बढ़ोतरी हुई है। जिसके कारण सात्विक आहार का महत्व और भी बढ़ गया है। आधुनिक शोध के अनुसार संतुलित पौष्टिक आहार विभिन्न तरह की बीमारियों को दूर करने और जीवन को गुणवत्तापूर्ण बनाने में सहयोग करता है। सात्विक आहार प्रत्येक व्यक्ति के लिए स्वस्थ जीवनशैली का आधार है। जो शारीरिक संतुलन, मानसिक शांति और अच्छे विचारों को उत्पन्न करती है। पके हुए फल सात्विक होते हैं और जब इन फलों से अचार बनाए जाते हैं तो वे राजसिक प्रवृत्ति के हो जाते हैं। फलों से बने मादक पेय एवं मदिरा तामसिक प्रवृत्ति के बन जाते हैं। इस शोध पत्र के माध्यम से आहार परंपरा के सात्विक आयामों, साधना से संबंध एवं आधुनिक वातावरण में इसकी प्रासंगिकता का विश्लेषण किया गया है।

कुंजी शब्द – साधना, सात्विकता, सनातन संस्कृति, आहार परंपरा, आयुर्वेद ।

1. प्रस्तावना

सनातन संस्कृति में आहार केवल शरीर को पोषण ही नहीं देता बल्कि यह सामाजिक, मानसिक एवं आध्यात्मिकता से गहराई से जुड़ा हुआ है। भारतीय जीवन दर्शन में आहार को ष्अन्नं ब्रह्मोति व्यजानातष् कहा गया है अर्थात अन्न ब्रह्म

SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

वर्तमान परिदृश्य में जनजातीय अधिकार, नीतियाँ और सशक्तिकरण : एक समाजशास्त्रीय अध्ययन

डॉ. साधना यादव
असिस्टेंट प्रोफेसर, सोशियोलॉजी
श्री अग्रसेन कन्या पी.जी. कॉलेज, वाराणसी

भारत की जनजातियाँ देश की सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक विविधता का महत्वपूर्ण अंग हैं। यह समुदाय ऐतिहासिक रूप से वंचित, शोषित और उपेक्षित रहा है, जिसकी पहचान, अधिकार और संसाधनों पर पहुंच सीमित रही है। स्वतंत्रता के बाद भारत सरकार ने जनजातीय समुदायों के अधिकारों की रक्षा और उनके समग्र विकास के लिए अनेक नीतियाँ और योजनाएँ बनाई हैं। इनमें अनुसूचित जनजातियों को अनुसूचित क्षेत्र का दर्जा, वन अधिकार अधिनियम 2006, पंचायती राज (अनुसूचित क्षेत्र विस्तार) अधिनियम (PESA) 1996, शिक्षा एवं स्वास्थ्य सेवाओं में विशेष प्रावधान, तथा आर्थिक सहायता योजनाएं प्रमुख हैं।

जनजातीय सशक्तिकरण का तात्पर्य केवल आर्थिक विकास से नहीं, बल्कि सामाजिक न्याय, राजनीतिक भागीदारी, सांस्कृतिक संरक्षण और आत्मनिर्भरता से भी है। शिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगार, भूमि अधिकार और महिला सशक्तिकरण जैसे क्षेत्रों में ठोस प्रयासों के माध्यम से जनजातीय समुदायों को मुख्यधारा में लाने की पहल की जा रही है। विशेष रूप से जनजातीय महिलाओं की भूमिका सामाजिक परिवर्तन और सामुदायिक नेतृत्व में उल्लेखनीय रही है।

इस शोधपत्र का उद्देश्य जनजातीय अधिकारों की वर्तमान स्थिति, लागू नीतियों की प्रभावशीलता और सशक्तिकरण की दिशा में उठाए गए कदमों का विश्लेषण करना है, ताकि एक समावेशी और न्यायपूर्ण समाज की दिशा में सार्थक योगदान दिया जा सके।

भूमिका

भारत में अंग्रेजी शासन से पहले जनजातियों को अपनी शासन प्रणाली और जीवन शैली के लिए पूरी स्वतंत्रता हासिल थी। ब्रिटिश शासन के दौरान अनुसूचित जनजातियों को उपहास के नजरिये से देखा जाने लगा और उन्हें अपने पुश्तैनी अधिकारो से वंचित करने के लिए कई कानून लाए गए। साथ ही अधिकारों की मांग करने पर उनके साथ अपराधी जैसा व्यवहार किया गया।

जनजाति (आदिवासी) अधिकारो के अद्वितीय नायक बिरसा मुण्डा ने अपने आदिवासी समुदाय को जागरूक किया और ब्रिटिश शासन एवं जमींदारों के अत्याचारों के खिलाफ आवाज उठायी। सन् 1895 में उन्होंने 'उलगुलान या विद्रोह' का निर्देशन किया, जिसका उद्देश्य जनजाति समुदाय को उनकी भूमि और अधिकारों की रक्षा करना। बिरसा मुण्डा ने आदिवासी समाज मे धार्मिक और सामाजिक सुधारों की शुरुआत की साथ ही उन्होंने मुण्डा लोगों को उनकी राजनीतिक मुक्ति के लिए एकजुट किया और उनमें राष्ट्रवाद की भावना को विकसित किया।